शोध-प्रबंध

The Jaina Doctrine of Karma and the Science of the Genetics

समीक्षक
आचार्य कनकनन्दी

कृति का नाम : शोध-प्रबंध – The Jaina Doctrine of Karma and the Science of the Genetics.

लेखक : डॉ. सोहनराज तातेड़, *मानद सलाहकार – जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ (राज.)*
मानद सम्पादक – पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूँ (राज.)

स्थिति : *उपरोक्त शोध-प्रबंध के आधार पर जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ (राज.) द्वारा लेखक को पी-एच्.डी. उपाधि से अलंकृत किया गया। लेखक द्वारा शोध-प्रबंध पर आधारित पुस्तक शीघ्र प्रकाशित की जा रही है।*

समीक्षक : *दिगम्बर जैनाचार्य श्रद्धेय कनकनन्दीजी*

सत्य जिज्ञासु, उदारमना, शोध-बोध-खोज-आविष्कार के द्वारा धर्म-दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के सम्यक् समन्वय के द्वारा स्वपर-विश्व कल्याण के पक्षधर तथा जैन एकता एवं विश्वशान्ति के उपासक **श्री सोहनराज तातेड़** को "The Jaina Doctrine of Karma and the Science of the Genetics" के आधुनिक वैज्ञानिक शोधपूर्ण, आत्मकल्याणकारी के साथ-साथ विश्वकल्याणकारी नवीन कृति के निमित्त विद्यावाचस्पति (डॉ.) पदवी प्राप्त होना केवल **सोहनराज तातेड़** के लिए ही नहीं वरन् प्रत्येक शोधार्थी से लेकर समग्र जैन समाज तथा विश्वमानव के लिए उपादेय, उपकारी, गौरवमय एवं अनुकरणीय है। स्वयं **डॉ. सोहनराज तातेड़** के कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्य निम्न में उद्धृत करके उनकी सैद्धान्तिक-समीक्षा के द्वारा मैं यह सिद्ध करने का एक नम्र प्रयास कर रहा हूँ कि यह शोधकार्य अन्य भौतिक शोध कार्य से कितना व्यापक, महान्, सूक्ष्म, आध्यात्मिक-विश्वकल्याणकारी है।

I have tried my level best to compare karma with different genes situated on DNA of a chromosome taking in consideration characteristic of karma and genes both. **I arrived at conclusion that karmas are cause and genes are their effect (fruits). Karmas direct, instruct and motivate genes to function and mutate accordingly during their rise.** Karma is a component of subtlest body i.e. karma sarira and gene is a component of gross body. I came to conclusion that karmas possibly play their role in gross body of living organism with the help of genes. **I have tried my level best to bring spirituality nearer to science.**

उपर्युक्त विषयों की सैद्धान्तिक समीक्षा निम्नोक्त है–

स्वभावत: प्राकृतिक रूप से जीव का स्वरूप अमूर्तिक, अभौतिक एवं ज्ञान विज्ञानमय है परन्तु संसार अवस्था में संसारी जीव पर्याप्त अपेक्षा मूर्तिक एवं राग-द्वेष मल से कलुषित परिलक्षित होता है। इस प्रकार के विपरीत वैभाविक परिणमन का कारण क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासा मन में पैदा होना स्वाभाविक है। इसका प्रत्युत्तर देते हुए पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध भक्ति में बताया है–''अस्त्यात्मानादिबद्ध:'' संसारी आत्मा-अनादिकाल से कर्म बन्धन से बन्धा है। अत: पौद्गलिक कर्म सम्बन्ध से सांसारिक जीव पर्याय दृष्टि से मूर्तिक है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए श्रीमद्देवसेन स्वामी ने आलाप पद्धति में कहा है कि–

जीवस्याप्यसद्तयवहारेण मूर्त्तस्वभाव: ॥ 164 ॥

असद् भूत व्यवहार नय से पुद्गल से संश्लेषित सांसारिक जीव मूर्त्त स्वभाव वाला है। इसलिए कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में संसार का कारण बताते हुए निम्न प्रकार से कहा है–

तम्मा दु–णत्थि कोई सहावसवट्ठिदोत्ति संसारे।
संसारो पुण किरिया संसारमाणस्स दव्वस्स॥ 120 ॥

"In this world, therefore is nothing as such-absolutely established in its nature, after all mundance existence is (only) an activity of the soul-substance which is moving (in four grades of existence)."

वास्तव में जीव द्रव्यत्व से अवस्थित होने पर भी पर्यायों से अव्यवस्थित है, इससे यह प्रतीत होता है कि संसार में कोई भी (वस्तु) स्वभाव से अवस्थित नहीं है। (अर्थात् किसी का स्वभाव केवल अविचल एक रूप रहना नहीं है) और यहाँ (इस संसार में) जो अनवस्थितता है उसमें संसार ही हेतु है, क्योंकि उसके (संसार के) मनुष्यादि-पर्यायात्मकपना है, कारण कि वह संसार रूप से वैसा (अनवस्थित) है। (अर्थात् संसार का स्वरूप ही ऐसा है) अब परिणमन करते हुए द्रव्य का जो पूर्व दशा का परित्याग तथा उत्तर दशा का ग्रहण रूप क्रिया नामक परिणाम है, वही संसार का स्वरूप है।

द्रव्य अपेक्षा स्वभाव एवं जाति अपेक्षा जीव समान होते हुए भी सांसारिक जीव में जो विभिन्न विचित्रता परिलक्षित होती है। उसका कारण बताते हुए कलिकाल सर्वज्ञ महाप्रज्ञ वीरसेन स्वामी ने धवला में बताया है–

''ण च कारणेणविणा कज्जाणमुप्पत्ती अत्थि।..... ततो कज्जमेत्ताणि चेव कम्माणि वि अत्थितिणिच्छयो कायव्वो। जदि एवं तो भमर–महुवर..... कयंवादि सण्णिदेहि वि णामकम्मेहि होदव्वमिदि। ण एस दोसो इच्छिज्जमाणादो।''

कारण के बिना तो कार्य की उत्पत्ति होती नहीं है, इसलिए जितने (पृथ्वी, अप, तेजादि) कार्य हैं, उतने उनके कारण स्वरूप कर्म भी हैं, ऐसा निश्चित कर लेना चाहिए।

प्रश्न– यदि ऐसा है तो भ्रमर-मधुकर कदम्बादि नामों वाले भी नामकर्म होने चाहिए?

उत्तर– यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह बात को इष्ट है।

इसी कर्म-सिद्धान्त को राजवार्तिक में तार्किक शिरोमणी अकलंक देव स्वामी निम्न प्रकार बतलाते हैं–

लोके हरिशार्दूलवृकभुजंगादयो निसर्गत: क्रौर्य शौर्याहारादिसंप्रतिपत्तौ
वर्तन्ते इत्युच्यन्ते न चासावाकस्मिकी कर्मनिमित्तत्वात्।

लोक में भी शेर, भेड़िया, चीता, साँप आदि में शूरता-क्रूरता आदि परोपदेश के बिना होने से यद्यपि नैसर्गिक कहलाते हैं, परन्तु वे आकस्मिक नहीं हैं, क्योंकि कर्म उदय के निमित्त से उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त एवं दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि कर्म के निमित्त को प्राप्त करके यह जीव अनेक वैभाविक परिणामों को प्राप्त होकर नर नरकादि गति में विभिन्न दु:खों को भोगता है।

कम्मई दिढ़–घण चिक्कणई गरूवई वज्ज समाई।
णाण–वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडहिं ताई॥ 78॥

अनन्त ज्ञान वीर्यादि गुणों से युक्ति भगवान् आत्मा को कुपथ में पटकने वाला कर्म अत्यन्त बलवान् घनस्वरूप, दूसरों के द्वारा (जीव), सहज से नष्ट नहीं होने वाला अत्यन्त चिकने एवं वज्र के समान कठोर एवं भारी होने से अभेद्य एवं अच्छेद्य है।

आचार्यप्रवर भट्टाकलंकदेव स्वामी संसार का मूल कारण बताते हुए 'राजवार्तिक' में बताते हैं कि–

तत्दात्मनोऽस्वतन्त्रीकरणे मूलकारणम्।

वह (कर्म) आत्मा को परतन्त्र करने में मूल कारण है।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में भी कहा है–

मोहने संवृतं ज्ञानं स्वभाव लभते न हि।
मत्त: पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवै:॥ 7॥

जिस प्रकार नशीले कोदों के सेवन से जीव मदमत्त होकर हिताहित विवेक से रहित हो जाता है, उसी प्रकार मोह कर्मरूपी मद्य से पराभूत होकर–आच्छादित होकर–स्वाभाविक अनन्त ज्ञान स्वरूप अपना स्वशुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाता है–जान नहीं पाता है।

अनादि काल से अनन्त ज्ञानादि सम्पन्न यह परमात्मा द्रव्य कर्म से पराभूत होकर संसार में दर-दर भिखारी होकर परिभ्रमण कर रहा है। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखने पर जीव में अनन्त शक्ति होते हुए भी कर्म परवशत: अनन्त शक्ति, व्यक्ति रूप में नहीं है परन्तु अव्यक्त होने के कारण केवल सम्भावना रूप में, सुप्तावस्था में, जीव में अवस्थित है इसलिए पर्यायनिष्ठ दृष्टि से देखने एवं विचार करने पर अनादि काल से कर्म की परतंत्रता से संसारी जीव की शक्ति बहुत ही क्षीण है एवं कर्म की शक्ति बहुत ही दृढ़ है। इसलिए जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है, संसार अवस्था में जीव एवं कर्म का द्वन्द्व युद्ध चलता है।

''कत्थवि वलिओ जीवो कत्थवि कम्माइं हुंति वलियाइं।
जीवस्स य कम्मस य पुव्वविरूद्धाइं वइराइं॥''

(उद्धृत इष्टोपदेश की टीका)

कभी जीव बलवान् हो जाता है और कभी कर्म बलवान् हो जाता है। इसी प्रकार जीव एवं कर्म का पूर्व कालीन अनादि से विरुद्ध एवं वैरत्व चल रहा है।

''णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।''

अनेक जीव हैं, अनेक प्रकार के कर्म हैं और अनेक कर्म के अनुसार अनेक लब्धि हैं।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स णा विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥ 58॥